बहुलता प्रधान समाज – भारतीय दृष्टि

डा० आशुतोष दयाल माथुर
एसोसियेट प्रोफ़ैसर, सेंट स्टीफ़ंस कालिज, दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

सारांश

मनुष्य के ही स्वाभाविक मतवैभिन्य के कारण व्यक्तियों व समुदायों में आचार – विचार की भिन्नता दिखाई देती है। कुछ प्रवृत्तियों की समानता के कारण हम भले ही व्यक्तियों को समुदायों में विभक्त कर लेते हैं; किन्तु बहुविधता हर समाज का अनिवार्य तत्त्व है। भेद शंका व भय को तथा संघर्ष को जन्म देता है। अतः हर सभ्य समाज अपने विरोधाभासों का समाधान करने का प्रयास करता है। भारतीय समाज में विविधता वैदिक काल से ही दिखाई दे रही है॥ अतः भारत ने सामुदायिक सद्भाव स्थापित करने के लिये विविधता को ही अपनी शक्ति बना लिया। हम यहाँ परम नैयायिक जयन्त भट्ट के ग्रन्थ आगमडम्बर के आधार पर धार्मिक सम्प्रदायों के विरोधों के समाधान के आधारभूत सिद्धान्तों का विश्लेषण करेंगे।

प्रमुख शब्द – विविधता, साम्प्रदायिक सौहार्द, परस्पर सम्मान

भूमिका

भारतीय समाज सैंकड़ों वर्षों से एक बहुलताप्रधान समाज रहा है। अलग अलग धर्मों को मानने वाले, अलग अलग सामाजिक व सांस्कृतिक रीति रिवाजों का पालन करने वाले, अलग अलग दर्शनों को मानने वाले, खान पान, वेशभूषा व रहन–सहन में, चिन्तन व व्यवहार में अलग अलग स्तर पर जीने वाले असंख्य समुदायों से मिलकर भारत बना और आज भी इसका यही रूप है।

भारत में प्राचीन समय से सामाजिक जीवन के अनुशासित करने के नियम धर्मशास्त्र में बताये गये हैं। धर्मशास्त्र परंपरा स्वयं को वेद मूलक कहती है, अतः इस पूरी परंपरा को वैदिक परंपरा कहा जाता था। आज जिन रीति रिवाजों या जीवन पद्धतियों को हिन्दू पद्धति कहा जाता है वे सब उसी प्राचीन वैदिक परंपरा से विकसित हुईं हैं। धर्मशास्त्र अपने आप में कम से कम दो या ढाई हजार वर्षों तक भारतीय सामाजिक जीवन की मर्यादाएँ तय करते रहे। इस लंबी अवधि में समाज में एकरूपता नहीं रही। धर्मशास्त्र के भीतर दक्षिण व उत्तर के अनेक रीति रिवाजों में अन्तर था, अलग अलग इलाकों के, जातियों के, सामजिक समुदायों के यहाँ तक कि अलग अलग परिवारों के रीति रिवाजों में भिन्नता होती थी और वह धर्मशास्त्र को स्वीकार्य थी। समाज निरन्तर बदलता भी रहा इसलिये शास्त्र भी निरन्तर बदलते रहे। धर्म शास्त्रों ने बड़े-बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन अपने यहां स्वीकार किए हैं। कट्टरपंथियों और परिवर्तन वादियों के बीच में निरंतर संघर्ष का इतिहास हमें दिखाई देता है। उदाहरण के लिए एक बड़ा भारी विवाद का मुद्दा रहा है कि पुत्र हीन विधवा को पति की संपत्ति में अधिकार है कि नहीं। कुछ कट्टरपंथी विचारक कुछ पुरानी स्मृतियों के आधार पर यह कहते रहे कि ऐसी स्त्री को पति की संपत्ति में हिस्सा नहीं मिलेगा बल्कि मृतक की संपत्ति उसके पिता अथवा माता अथवा भाइयों को मिलेगी पत्नी को नहीं। किंतु धर्मशास्त्र में इसका भरपूर विरोध भी मिलता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने १२ वीं शती में स्त्रियों के अधिकार के लिये बड़ी लड़ाई लड़ी और पुत्रहीन विधवा को सम्पत्ति में अधिकार दिलवाने के लिये अनेक कट्टरपंथी धर्मशास्त्रियों से जमकर बहस की॥

©Indira Gandhi National Open University

जाति के नाम पर भेदभाव, तथा कथित निम्न जातियों को सामाजिक और आर्थिक सीढी के सबसे निचले पायदान पर रखकर उनका तरह तरह से प्रताडन व शोषण आज भी चल रहा है। उन्हें वैदिक समाज का हिस्सा कहा गया पर समाज के अधिकांश अधिकारों से वंचित कर दिया गया। पर समझने की बात यह है कि शास्त्र परंपरा में इस कुपरंपरा का कई जगह विरोध भी लिया गया। महाभारत पूछता है कि जब सब मनुष्य एक प्रजापति या ब्रह्मा या ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं तो उनमें भेद कैसे किया जा सकता है। क्या एक पेड पर अलग अलग फल लग सकते हैं क्या एक पिता के पुत्रों की जाति अलग अलग हो सकती है। जन्मना जाति के सिद्धान्त का भरपूर विरोध भारत में हुआ किन्तु अनेक आर्थिक व राजनीतिक कारणों से यह यह रोग हमारे समाज से दूर नहीं हो पाया ।

कालक्रम से वैदिक परंपरा के सामने आ खडी हुईं बौद्ध, जैन, शैव, माहेश्वर, पांचरात्र आदि अनेक परंपरायें जो वेद को नहीं मानती थीं। इन्होंने वेद को छोड़कर अपने शास्त्र, अपने गुरु व अपने प्रमाण बना लिये। इससे विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई। वैदिक तथा कथित रूप से वेद विरोधी परम्पराओं की प्रामाणिकता के विषय में न्याय व मीमांसा के घोर विवाद का दर्शन नवीं शती के महान नैयायिक जयन्त भट्ट द्वारा विरचित रूपक आगमडम्बर में होता है।

इससे पहले मीमांसकों की अपनी परम्परा में अर्थात् जैमिनीय सूत्रों व शाबर भाष्य में स्मृतियों के प्रामाण्य विषयक मुख्य बिन्दुओं पर दृष्टिपात करना प्रासङ्गिक होगा, जिससे यह पता चलेगा कि शाबर भाष्य के काल से जयन्त के काल तक (लगभग दूसरी – तीसरी शताब्दी ईस्वी से लेकर नवीं शताब्दी ईस्वी तक) वेदेतर परम्पराओं के प्रति दृष्टि कितनी बदल चुकी थी। धर्मशास्त्र के इतिहास में यही वह समय भी है जब पुरानी स्मृतियों पर अनेक नई टीकाएँ लिखी गईं और निबन्ध ग्रन्थों का प्रणयन आरंभ हुआ। अतः धर्म के प्रति नई चेतना इस काल में उत्पन्न हुई। एतदर्थ जैमिनी के पूर्वमीमांसा सूत्रों के तृतीय अध्याय के कुछ सूत्र व उनपर शाबर भाष्य अवलोकनीय है।

प्रथम अध्याय के तृतीय पाद के प्रथम सूत्र के अनुसार पूर्वपक्षी कहता है की स्मृति ग्रंथ प्रामाणिक नहीं हो सकते क्योंकि धर्म के विषय में केवल वेद ही प्रमाणिक है। दूसरे सूत्र में इस का उत्तर दिया गया है । ऋषि कहते हैं की मनु आदि ऋषियों के सभी वचन प्रमाण हैं क्योंकि वे वेद पर आधारित हैं। शबर ने यहां तक कहा कि मनु आदि ऋषि अपने जीवन में स्वयं वेद का पालन करते थे इस लिये उनके सब वचन प्रमाण हैं। कुमारिल ने इस सूत्र की व्याख्या में कहा है कि मनु आदि ऋषियों के वचन मान्य हैं क्योंकि वे स्वयं वेद के अध्येता थे। कुल मिलाकर मीमांसक ने स्मृति की प्रामाणिकता श्रुतिमूलकता के आधार पर स्थापित की है। किन्तु धर्मशास्त्र वेदमूलक मन्वादि स्मृतियों से बहुत आगे निकल गया है॥ २०० से अधिक स्मृतियाँ, अनेक टीकाकार व अनेक निबन्धकार अपने अपने ढंग से परस्पर विरोधी धर्मों का विधान करते हैं। कलौ पराशरस्मृतिः जैसे वचन मन्वादि प्राचीन स्मृतिकारों को ही चुनौती दे डालते हैं। जैसे जैसे हम काल क्रम से आगे बढ़ते हैं वैसे वैसे अनेक नए लेखक अधिक प्रामाणिक होते चले जाते हैं।

विषय प्रतिपादन

मीमांसकों के तर्क के आधार पर सब अवैदिक धर्म अमान्य हो जायें। अतः भारतीय चिन्तन को मीमांसा के दुराग्रह से आगे बढ़ना पडा। मीमांसक के कट्टर मत का विरोध करना इसलिये भी आवश्यक भी क्योंकि कालक्रम से बहुत से अवैदिक संप्रदाय भारत में ही उत्पन्न हो चुके थे और समाज में अपना स्थान बना चुके थे। अतः समाज की यह आवश्यकता थी कि प्रमाण मीमांसा में भी उन्हें समुचित स्थान दिया

©Indira Gandhi National Open University

जाये। आगमडम्बर की कथा एक युवा एवं उत्साही मी मांसक सङ्कर्षण से आरम्भ होती है जिसने सभी अवैदिक तन्त्रों को निर्मूल करने का सङ्कल्प लिया है। वह अवैदिक सम्प्रदायों के विद्वानों को ढूँढ ढूँढ उन्हें वाद में पराजित करता है। इस क्रम में वह प्रथम व द्वितीय अङ्क में सौगत व जैन को स्वयं हराता है। तृतीय अङ्क तक कहानी में एक नाटकीय मोड़ आ जाता है। अब सङ्कर्षण कश्मीर के राजा का अधिकारी बन जाता है तथा उसे वेदविरोधी सम्प्रदायों की पहचान करने का दायित्व दिया जाता है। एक निष्ठावान मीमांसक के रूप में वह मानता है कि पाञ्चरात्र तथा माहेश्वर वैदिक नहीं हैं किन्तु उसकी विडम्बना यह कि उसका आश्रयदाता राजा स्वयं माहेश्वर है। अब वह करे तो क्या करे। अस्तु, वह माहेश्वर सिद्ध से तो हाथ मिला लेता है तथा चार्वाक विचारक को उसके हाथों पराजित करवाता है। माहेश्वर व चार्वाक का विवाद ईश्वर की सत्ता के इर्द गिर्द घूमता है जिससे मीमांसक सङ्कर्षण माहेश्वर दर्शन को ईश्वरवादी होने के कारण वेदानुकूल मान लेता है।

चतुर्थ अङ्क में राजा एक बृहत् विद्वत्सभा का आह्वान करता है जहाँ पाँचरात्र सम्प्रदाय की प्रामाणिकता पर मुख्यतः विचार होता है। सभाध्यक्ष धैर्यराशि वादी प्रतिवादी के तर्कों को विस्तार से रखते हैं तथा अन्त में अपना वह निर्णय सुनाते हैं कि न केवल पाँचरात्र अपितु सभी आगम प्रामाणिक हैं ॥

धैर्यराशि ने स्वयं ही पूर्व पक्ष व उत्तर पक्ष की युक्तियों का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया है। निष्कर्ष रूप में जयन्त ने सभी आगमों की प्रामाणिकता अनेक तर्कों से सिद्ध की है ।

१. सब आगम वेद के समान ईश्वर कृत होने के कारण प्रामाणिक हैं –

विधाता विश्वात्मा सकलजगतामेष यथा
प्रणेता वेदानामपि स हि तथैवामलमतिः ॥ ४३ ॥
तद्वत् सर्वागमानां भवतु स भगवानेक एव प्रणेता ॥ ४५ ॥

इसी प्रकार सभी आगमों का प्रणेता ईश्वर है।
मीमांसक इस कथन से सहमत नहीं होता। वह कहता है कि इन आगमों में बहुत विरोध है अतः इनका एक कर्ता नहीं हो सकता । इस पर नैयायिक प्रतिवाद करता है – कि जैसे श्रुति में विरोध का परिहार विषय भेद के आधार पर किया जाता है वैसे ही इन आगमों के भेद का समाधान किया जा सकता है। अर्थात् एक ही ईश्वर ने विषय भेद से अनेक आगम बनाये हैं –

विरोधश्चैतस्यां यदि विषयभेदात् परिहृतो
भवद्भिः सैव स्यात् सरणिरिह तीर्थान्तरगिराम् ॥ ४८

२. दूसरी युक्ति देते हुए नैयायिक प्रवर जयन्त भट्ट सब आगमों की तुल्यफलता का प्रतिपादन करते हैं कि सभी आगम प्रामाणिक हैं क्योंकि वे सब मोक्ष या कैवल्य के विविध मार्गों का ही प्रतिपादन करते हैं –

परमं पुरुषार्थं प्रति न चागमानां विरोधिता काचित्।
आदिश्यते हि सर्वैः कैवल्यं तुल्यमेव फलम् ॥ ४९

©Indira Gandhi National Open University

पद्य ५२ भारतीय समन्वयात्मक दृष्टि का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है –

प्रवेष्टुकामा बहवः पुमांसः पुरे यथैकत्र महागृहे वा ।
द्वारान्तरेणापि विशन्ति केचित् तथोत्तमे धाम्नि मुमुक्षवोऽपि॥

जैसे एक नगर या एक विशाल घर में लोग अलग अलग द्वारों से प्रवेश करते हैं वैसे ही मुमुक्षुओं के लिये ये सब सम्प्रदाय अलग अलग द्वार हैं
जयन्त अत्यन्त काव्यात्क शैली में इसी बात को पुनः कहते हैं –

नानाविधैरागममार्गभेदैरादिश्यमाना बहवोऽभ्युपायाः।
एकत्र ते श्रेयसि सम्पतन्ति सिन्धौ प्रवाहा इव जाह्नवीयाः॥

जैसे जाह्नवी की अनेक धारायें एक समुद्र में मिलती हैं वैसे ही नाना आगमों द्वारा निर्दिष्ट उपाय मोक्ष रूपी फल में एकीभूत हो जाते हैं॥

३. जयन्त की तीसरी युक्ति है कि जिन, सुगत आदि सभी आगम कर्ता सिद्ध पुरुषों को ईश्वर प्रणिधान से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है –

यद्वा जिनप्रभृतयो बहवो भवन्तु
भिन्नागमप्रणयनप्रवणा मुनीन्द्राः।
पश्यन्तु तेऽपि भगवत्प्रणिधानलब्ध–
शुद्धाविनश्वरदृशः कुशलानुपायान् ॥

पुनः, वेदों के समान पाँचरात्र आदि आगम भी अज्ञातकर्तृक तथा अनादि हैं।
अन्य आगमों को वेदतुल्य कहने से मीमांसक कुछ क्रुद्ध होकर पूछता है कि वेद तो चार ही हैं पाँच –या सात नहीं हो सकते ।

इसपर नैयायिक चुटकी लेता है कि हम कब कह रहे हैं कि वेद अनेक हैं। हम तो कह रहे हैं कि जैसे आप वेद की अनेक शाखाएँ मानते हैं वैसे इन सब आगमों को भी वेद की शाखायें मान लीजिये –

भवति तु बहुशाखाविस्तरस्तत्र चित्र–
स्तदयमपि तेषामस्तु शाखाविशेषः ।॥ ६८ ॥

ऐसा लग रहा है कि नैयायिक जान बूझकर मीमांसक को छेड़ रहा है – अरे, जब आपको अनुकूल लगता है तब आप शाखा भेद की कल्पना कर लेते हैं। यह वेद की प्रामाणिकता दिखाने की बहुत विचित्र अर्थात् युक्तिहीन और असंगत विधि है।

©Indira Gandhi National Open University

मीमांसक पुनः विप्रतिपत्ति करता है कि ये सब आगम वेदानुमत नहीं हो सकते क्योंकि इनमें निर्दिष्ट कर्म किसी वेद में नहीं मिलते। नैयायिक उत्तर में कहता है कि अनेक वैदिक कृत्य भी मीमांसा समर्थित वेदों में नहीं मिलते। पुनः वेदों व स्मृतियों में अनेक विरोध के स्थल भी हैं। अतः जो उनका समाधान हो वही इन शास्त्रों पर भी लागू हो सकता है।

४. जयन्त की एक अन्य युक्ति यह है कि अन्य सम्प्रदायों के शास्त्रों की निन्दा वेदनिन्दा के समान है क्योंकि ये शास्त्र भी धर्म का विधान करते हैं और आपके अनुसार वेद धर्म के प्रतिपादक हैं। अतः धर्मप्रतिपादकत्वेन इन शास्त्रों का वेदत्व सिद्ध होता है। एक नैयायिक ही ऐसी अद्‌भुत युक्ति दे सकता है।
५. जयन्त चेतावनी देते हैं कि अन्य सम्प्रदायों के ग्रन्थों को लोभ या अज्ञान जन्य नहीं कहना चाहिये क्योंकि वेदों को भी पुरोहितों की स्वार्थसिद्धि का साधन कहा जा सकता है। अतः इस युक्ति में तुल्यदोषता है –

लोभादि दृश्यमानं वा यदि मूलमिहोच्यते ।
वेदो हि जीविकोपाय इति जल्पन्ति नास्तिकाः ॥ ९३

६. पुनः जयन्त कहते हैं कि भिन्न भिन्न सम्प्रदाय अपने अपने सिद्धान्तों अपनी अपनी युक्ति से प्रामाणिक मानते हैं ॥ अतः इसमें अनर्थक विवाद नहीं करना चाहिये –

सर्वं प्रमाणमिति नीतिविदो वदन्ति – ९८

मीमांसक फिर लौट कर आता है और कहता है कि सर्वं प्रमाणं मानने से तो हर अनर्गल बात को प्रामाणिक मानना पडेगा।

इसका बहुत उपयुक्त समाधान किया गया है – कि जिन शास्त्रों की धारा अविच्छिन्न रूप से सबके सामने बहती आ रही है, जिनसे शिष्ट जनों का निरन्तर संवाद होता आ रहा है और जिनका अनुष्ठान जनबाह्य अर्थात् लोकविपरीत या लोकोत्तेजक नहीं हैं और जो बिलकुल नए नहीं हैं – वे सब शास्त्र प्रमाण हैं –

अविच्छिन्ना येषां वहति सरणिः सर्वविदिता
न यत्रार्यो लोकः परिचयकथालापविमुखः ।
यदिष्टानुष्ठानं न खलु जनबाह्यं न सभयं
न रूपं येषां च स्फुरति नवमभ्युत्थितमिव ॥ १००

शास्त्रों की प्रामाणिकता के विषय में अपना चरम निष्कर्ष देते हुए जयन्त ने कहा है कि जो प्रमत्तों या उन्मत्तों के वचन नहीं, जो बिल्कुल बेसिर पैर के नहीं, जिन के मूल में कोई लोभ नहीं, जो किसी कुत्सित मार्ग का उपदेश नहीं करते – वे सब आगम प्रामाणिक हैं ॥

इस विषय में जयन्त से आगे जाकर धर्मशास्त्र के दो अन्य बिन्दु ध्येय हैं। एक कि अपने सम्प्रदाय के भीतर दोषों पर खुलकर बात होनी चाहिये तथा उन्हे दूर करने के लिये संघर्ष अवश्य करना चाहिये। स्वयं धर्मशास्त्र में विभिन्न विषयों पर जमकर बहस की जाती थी।

©Indira Gandhi National Open University

दूसरी बात यह है कि यदि कोई सामाजिक रीति रिवाज नैतिकता के इतना विरुद्ध हो कि लोग उससे जुगुप्सा करें तो स्वयं राजा को यह अधिकार दिया गया है कि वह उन्हें निरस्त कर दे। उदाहरण – परिवार की स्त्रियों से वेश्यावृत्ति करवाना। ध्यातव्य है कि किसी सम्प्रदाय की कोई बात किसी अन्य को कितनी ही बुरी लगे, वह व्यक्ति स्वयं उस सम्प्रदाय के अनुयायियों को दण्ड देने का अधिकारी नहीं। ऐसे में कोई फैसला करने का अधिकार केवल राज्य की सक्षम संस्थाओं को दिया गया है। ये फैसले आपसी लडाई झगडों से नहीं किये जा सकते।

उपसंहार

जयन्त भट्ट के आगमडम्बर में यह निष्कर्ष दिये गये हैं –

१ सभी सम्प्रदायों के सभी शास्त्र वेदवत् प्रामाणिक हैं। जितनी प्रामाणिकता वेदवादियों के लिये वेद की है, उतनी ही प्रामाणिकता अन्य सम्प्रदायों के अनुयायियों की दृष्टि में उनके शास्त्रों की है।

२ विरोधी आस्थायें रखने वाले लोगों के लिये यह अनिवार्य है कि वे परस्पर एकदूसरे की परम्पराओं पर आक्षेप न करें। (सामाजक सौहार्द के लिये यह अपरिहार्य है।)

३ किसी भी व्यवस्था, नियम, शास्त्र, मान्यता, रीति रिवाज की मान्यता इसलिये होती है क्योंकि समाज के शिष्ट जन उन्हें मानते हैं।

४ कोई परम्परा अमान्य तभी होगी जब वह सामान्य नैतिकता के इतनी विरुद्ध हो कि लोग उससे जुगुप्सा करें।
५ ऐसे सिद्धान्तों या सम्प्रदायों के विरुद्ध राजा या शासन को कार्वाई करनी चाहिये, सामान्य जन को किसी वर्ग या समुदाय के विरुद्ध कोई कार्वाई करने का अधिकार नहीं है।

६ राजा को भी निरंकुश रूप से कार्वाई करने का अधिकार नहीं। उसे पहले योग्य विद्वानों की सभा में खुली चर्चा करवानी चाहिये तथा सभा के निर्णय का अनुपालन करना चाहिये। आज के सन्दर्भ में यह कार्य मान्य सर्वोच्च न्यायालय निभा रही है।
जयन्त के इस विवेचन से ज्ञात होता है कि लोकतन्त्र व सर्वधर्मसमभाव का सिद्धान्त हमारे वर्तमान संविधान की ही नहीं अपितु समग्र भारतीय चिन्तन की भी आत्मा है। यह भारत की आध्यात्मिक शक्ति का सुपरिणाम है कि उसने सङ्कर्षण जैसी कट्टरपन्थी ताकतों का अनुसरण नहीं किया। सङ्कर्षण की शिकायत पर राजा ने अनेक सम्प्रदायों के विरुद्ध हिंसा, वध, व प्रपीडन का कुचक्र चला दिया था। लोग आतङ्कित होकर पलायन करने लगे थे। धन्य हैं नैयायिक प्रवर धैर्यराशि अथवा जयन्त भट्ट जिन्होंने उस आतङ्क से भारत की आत्मा को कलुषित होने से बचा लिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. आगमडंबर ,जयन्त भट्ट – सं ,दरभंगा ,मिथिला विद्यापीठ ,राघवन् व अनन्तलाल ठक्कुर वी० . १९६४
२. 'Much Ado About Religion' A Critical Edition and Annotated Translation of the Agamadabar a, a Satirical Play by the ninth century Kashmirian philosopher Bhatta Jayanta D. Phil, thesis 15 January 2004 Csaba Dezso, Balliol College

©Indira Gandhi National Open University